यू. पी. राज्य

बनाम

हरेंद्र अरोड़ा एवं अन्य

2 मई, 2001

{ जी. बी. पटनायक और बी. एन. अग्रवाल, जे. जे.]

सेवा कानून सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील)

नियम, 1930-नियम 55 ए-- कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त करना-नियमों के अनुसार जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करना-बर्खास्तगी के आदेश का प्रभाव-भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) की वैधता।

प्रतिवादी, एक कार्यकारी अभियंता, को एक आरोप पत्र दिया गया था जिसमें उनकी सेवा के दौरान उनके द्वारा की गई विभिन्न अनियमितताओं को शामिल किया गया था। जाँच के बाद, जिसमें आरोप साबित हुए, प्रतिवादी को बर्खास्त करने की सिफारिश की गई। राज्य सरकार ने नोटिस जारी करने के बाद प्रतिवादी को सेवा से बर्खास्त कर दिया। प्रतिवादी ने बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण के समक्ष याचिका दायर की। न्यायाधिकरण ने बर्खास्तगी के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि प्रतिवादी को जांच रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गई थी।

राज्य की अपील पर, उच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरण के आदेश को बरकरार रखते हुए अपील को खारिज कर दिया।

इस न्यायालय में अपील करते हुए, राज्य सरकार ने तर्क दिया कि बर्खास्तगी के आदेश को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करने के आधार पर अमान्य नहीं किया जा सकता है, जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि प्रतिवादी इस तरह से पूर्वाग्रह से ग्रस्त था।

प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1930 के नियम 55 ए के अनुसार और जांच रिपोर्ट प्रत्यर्थी को प्रस्तुत की जानी थी, लेकिन प्रस्तुत नहीं की गई थी।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय का

निर्धारण- सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1930 का नियम 55 ए उचित अवसर और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रतीक है। जाँच रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत करने के लिए यह प्रावधान

एक प्रक्रियात्मक और एक अनिवार्य चरित्र का है, लेकिन फिर भी एक अपचारी को

यह दिखाना होगा कि वह इसके गैर-पालन से प्रतिकूल रूप से प्रभावित रहा है। जाँच रिपोर्ट जमा करने के बाद, राज्य सरकार ने अपराधी को कारणदर्शक नोटिस भेजा, जिसके अनुसार उसने कारण दिखाया और अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने इस पर विचार करने के बाद बर्खास्तगी का

आदेश पारित किया। यह प्रत्यर्थी का रुख नहीं है कि जांच रिपोर्ट के अभाव में बर्खास्तगी का आदेश पारित होने से पहले एक प्रभावी कारण नहीं बता सका। न तो न्यायाधिकरण और न ही उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने यह मुद्दा उठाया था कि वह जांच रिपोर्ट के अभाव में नोटिस का प्रभावी उत्तर दाखिल नहीं कर सकता था एवं नोटिस के उत्तर में न ही यह शिकायत की गई थी कि अपराधी को जांच रिपोर्ट की एक प्रति नहीं दी गई थी। इन तथ्यों से यह मानना संभव नहीं है कि प्रतिवादी को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से विपरीत रूप से प्रभावी हुआ है।

प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद और अन्य बनाम बी. करुणाकर एवं अन्य, [1993] 4 एस. सी. सी. 727 सी. बी. और भारत संघ और अन्य बनाम मोहम्मद. रमजान खान, [1991] 1 एस. सी. सी. 588, पर भरोसा किया।

भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल, [1985] 3 एस. सी. सी. 398 सी. बी.; चरण लाल साहू बनाम भारत संघ, [1990] 1 एस. सी. सी. 613 सी. बी.; कैलाश चंदर अस्थाना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1988] 3 एस. सी. सी. 600; जानकीनाथ सारंगी बनाम उड़ीसा राज्य, [1969] 3 एससीसी 392; के. एल. त्रिपाठी बनाम भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य। [1984] 1 एस. सी. सी. 43; सुनील कुमार बनर्जी बनाम पश्चिम बंगाल

राज्य एवं अन्य, [1980] 3 एस. सी. सी. 304; स्टेट बैंक ऑफ पटियाला एवं अन्य बनाम एस. के. शर्मा, [1996] 3 एस. सी. सी. 364 और कृष्ण लाल बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, [1994] 4 एस. सी. सी. 422, को संदर्भित किया गया।

रसेल बनाम ड्यूक ऑफ नॉरफ़ॉक एवं अन्य, [1949] 1 सभी ई. आर. 109; रिज बनाम बाल्डविन एवं अन्य, (1964) अपील केसेज 40; आर. बनाम सचिव राज्य परिवहन, एक पक्षीय ग्वेंट काउंटी परिषद, (1987) 1 सभी ई. आर. 161 और डेविस बनाम कैरू-पोल एवं अन्य, (1956) 1 साप्ताहिक विधि रिपोर्ट 833, को संदर्भित किया गया।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 5241/1998.

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रिट याचिका संख्या 5225/1990 में निर्णय व आदेश दिनांक 13.1.1998

अपीलार्थी की ओर से वाई. पी. सिंह और पी. एन. पुरी। उत्तरदाताओं के लिए डी. एस. चौबे, बी. एन. मिश्रा और एस. के. मिश्रा।

न्यायालय का निर्णय माननीय न्यायाधिपति श्री बी.एन. अग्रवाल की खंड पीठ द्वारा लिखा गया। इस अपील में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा एक रिट याचिका में उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 की बरखास्तगी के आदेश की निरस्तगी को सही ठहराने के आदेश को चुनौती दी गयी।

प्रतिवादी संख्या 1- हरेंद्र अरोड़ा (इसके बाद 'जिसे' के रूप में संदर्भित) प्रत्यर्थी जिन्हें वर्ष 1960 में उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग में सहायक अभियंता के रूप में अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था, को उक्त पद पर स्थायी नियुक्त किया गया और वर्ष 1963 में जिसे कार्यकारी अभियंता के रूप में पदोन्नत किया गया। दिनांक 31-03-1970 को प्रत्यर्थी को प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा एक आरोप पत्र दिया गया था जिसमें नियुक्ति स्थान पर कार्यकारी अभियंता के रूप में तैनात होने के दौरान माल की खरीद के संबंध में उसके द्वारा की गई विभिन्न अनियमितताओं को शामिल किया गया था, जिसके लिए उसे अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी जो विधिवत रूप से उसे प्रस्तुत किया गया था। कारण बताओ नोटिस के जवाब की प्राप्ति पर, पूर्ण जांच की गई, जिसके बाद प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने राज्य सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें एक निष्कर्ष दर्ज किया गया कि आरोप की पुष्टि की गई थी और प्रतिवादी को सेवा से बर्खास्त करने की सिफारिश की गई थी, जिसकी प्राप्ति पर राज्य सरकार ने एक कारण बताए जाने का आदेश जारी किया कि प्रत्यर्थी यह कारण बताएँ कि उसे सेवा से क्यों बर्खास्त नहीं किया जाए। उक्त नोटिस के अनुसरण में, प्रत्यर्थी ने कारण बताएँ नोटिस पर अपना जवाब प्रस्तुत किया, जिसके बाद राज्य सरकार ने अपनी टिप्पणियों के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण को जवाब भेजा और उसी की प्राप्ति पर दिनांक 13-03-1973 को प्रत्यर्थी को सेवा से बरखास्तगी का आदेश पारित

किया गया जिस आदेश को उत्तरदाता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट आवेदन दायर करके चुनौती दी गई थी और उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1976 के लागू होने के मद्देनजर इस रिट आवेदन को निरस्त कर दिया गया था, जिस पर उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण के समक्ष एक दावा याचिका दायर की गई थी जिसमें प्रत्यर्थी द्वारा बर्खास्तगी के अपने उपरोक्त आदेश को चुनौती दी गई थी। न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को स्वीकार कर लिया और मुख्य रूप से इस आधार पर बर्खास्तगी के आदेश को रद्द कर दिया कि जांच रिपोर्ट की प्रति, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संशोधित सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1930 के नियम 55-ए के तहत कर्मचारी को नहीं दी गयी थी जिसके खिलाफ राज्य की ओ र से एक रिट आवेदन दायर किया गया जिसमें उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने न्यायाधिकरण के उसी आदेश को बरकरार रखते हुए रिट आवेदन खारिज कर दिया। इसलिए विशेष अनुमति द्वारा यह अपील दायर की गयी।

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत अपील के समर्थन में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ द्वारा प्रबंधन निदेशक इसीआईएल हैदराबाद एवं अन्य बनाम बी. करुणाकर और अन्य, [1993] 4 एस. सी. सी. 727, के मामलें को प्रस्तुत किया जिसमें यह अभिनिर्धारित है कि केवल इसलिए कि एक जांच रिपोर्ट अपचारी को प्रस्तुत नहीं की गई है, वह बर्खास्तगी के आदेश को अमान्य तब तक नहीं

करेगी जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि इससे अपचारी विपरीत रूप से प्रभावित हुआ है। वर्तमान मामलें में यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि प्रत्यर्थी विपरीत रूप से प्रभावित हुआ हो। ऐसे में प्रत्यर्थी को सेवा से बरखास्त करने के आदेश को अपास्त करना अनावश्यक था। दूसरी ओर प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ईसीआइएल के मामलें में निर्धारित कानून का इस मामलें में कोई अनुपयोग नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी की सेवा शर्तों को नियत्रित करने वाले नियमों के उपबंधों के अनुसार जांच की कार्यवाही की प्रति प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। जिसमें स्पष्ट तौर पर जांच रिपोर्ट भी शामिल है। जबकि ईसीआइएल के मामलें में वैधानिक नियमों के तहत ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी, बल्कि आवश्यकता संविधान के अनुच्छेद 311(2) पर दी गई व्याख्या के आधार पर थी।

भारत संघ और अन्य के मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा भारत संघ एवं अन्य बनाम मोहम्मद रमजान खान, [1991] 1 एस. सी. सी. 588, जैसा कि ई. सी. आई. एल. के मामले में अनुमोदित किया गया था, और परिणामस्वरूप ई. सी. आई. एल. के मामले में निर्धारित विपरीत रूप से प्रभावित होने का सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा और जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत नहीं करने में केवल नियम के उल्लंघन के लिए आदेश को सही अपास्त किया

गया था। इस प्रकार, परस्पर विरोधी तर्को को देखते हुए, हमारे लिए निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होता है-

विचारणीय प्रश्नः

> "क्या ई. सी. आई. एल. के मामले में निर्धारित कानून की अपचारी को दंडित करने का आदेश उसको जांच रिपोर्ट की प्रति न देने के आधार पर स्वतः खारिज नहीं किया जा सकता जब तक कि अपचारी इस कारण विपरीरत रूप से प्रभावित नहीं हुआ हो। उक्त निर्धारण उन मामलों पर भी लागू होगा जहां वैधानिक नियमों के तहत अपचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध करवाने की आवश्यकता है।"

उक्त विचारणीय प्रश्न के विवेचन के लिए अपचारी को जांच अधिकारी की रिपोर्ट प्रस्तुत करने के विषय पर कानून की उत्पति का उल्लेख करना भी जरूरी है। इस विषय में कानून को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। एक कानून के तहत जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता और दूसरा प्रकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार होगा। जहां तक वैधानिक आवश्यकता का सवाल है लोक सेवक (जांच अधिनियम 1850) के तहत लोक सेवकों के खिलाफ दुर्व्यवहार के आरोप की औपचारिक व सार्वजनिक जांच का प्रावधान किया गया था। जबकि उक्त अधिनियम कानून बना रहा तथा भारत सरकार ने भारत सरकार अधिनियम 1919 अधिनियमित किया।

जिसकी धारा 96 बी की उपधारा (2) ने परिषद में राज्य सचिव को उनकी सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियम बनाने के लिए अधिकृत किया। अन्य बातों के साथ साथ अनुशासन और आचरण जिसके अनुसार सिविल सेवा नियम वर्गीकरण 1920 बनाए गए थे। और नियम XIV में प्रावधान किया गया था कि बरखास्तगी निष्कासन या रेंक में कमी की सजा देने का आदेश किसी विभागीय जांच के बिना पारित नहीं किया जाएगा, जिसमें लिखित में निश्चित आरोप हो एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा और उसके बाद प्रत्येक आरोप पर निष्कर्ष वर्णित करना होगा। लेकिन नियमों के तहत जांच के दौरान प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर की जाने वाली प्रस्तावित कार्यवाही के खिलाफ अपचारी की सुनवाई की कोई आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त नियमों का पालन (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1930 में किया गया था जिसमें नियम 55 में इसी समान प्रावधान किया गया था। इसके बाद इसी तर्ज पर भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 240 उपधारा 3 में यह प्रावधान किया गया कि सिविल सेवक को तब तक बरखास्त नहीं किया जाएगा या रेंक में कमी नहीं की जाएगी जब तक कि उसके विरूद्ध प्रस्तावित कार्यवाही के संबंध में उसे हेतुक दर्शित करने हेतु पर्याप्त अवसर न दिया गया हो। यह इसलिए अभिनिर्धारित किया गया कि कर्मचारी को जांच में निकले निष्कर्ष की प्रति उपलब्ध करायी जावे ताकि कर्मचारी को उसके विरूद्ध दोषारोपण के लिए निकाले गए निष्कर्ष् एवं प्रस्तावित दंड के

विरूद्ध उसी स्तर पर पर्याप्त कारण दर्शित करने का अवसर उपलब्ध हो जाए।

उपरोक्त प्रावधान वस्तुतः 1963 के संविधान (15 वें संशोधन अधिनियम) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 311(2) में शामिल किया गया था। जिसमें पर्याप्त अवसर के दायरे को समझाया और विस्तारित किया गया और इस अभिव्यक्ति के लिए ''जब तक कि कर्मचारी को उसके संबंध में प्रस्तावित कार्यवाही के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर नहीं दिया गया '' ''

उसे उसके खिलाफ आरोपों के बारे में सूचित किया गया है और उन आरा ेपों के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर दिया गया है और जहां ऐसी जांच के बाद उस पर ऐसा कोई दंड लगाने का प्रस्ताव है, जब तक कि उसे प्रस्तावित दंड पर पर्याप्त सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया, लेकिन केवल ऐसी जांच के दौरान प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर'' उक्तानुसार प्रतिस्थापित किया गया है।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि पंद्रहवें संशोधन में, पहली बार, उन विशिष्ट आरोपों की जांच करने का प्रावधान किया गया था, जिनकी जानकारी अपचारी कर्मचारी को पहले से दी गई थी और जिसमें उसे उन आरोपों के खिलाफ अपना बचाव करने का उचित अवसर दिया गया था। संशोधन में अपचारी कर्मचारी को दूसरे अवसर का भी प्रावधान किया कि

यदि यह जांच के परिणामस्वरूप प्रस्तावित किया गया था तो वह दंड के खिलाफ कारण दिखा सकता है। न्यायालय ने यह माना कि दंड के खिलाफ कारण दिखाने के दूसरे अवसर का उपयोग अपचारी कर्मचारी आरोपों के निष्कर्ष के खिलाफ भी प्रतिवेदन देने का हकदार था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिवर्तन के बावजूद, जिस स्तर पर अपचारी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की एक प्रति का हकदार माना गया था वह स्तर यह था जब उस पर दंड प्रस्तावित किया गया जो कि संशोधन से पहले प्रचलित कानून था।

संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के प्रावधानों में आगे और संविधान (42 वां संशोधन) अधिनियम 1976 द्वारा संशोधित किया गया। जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया ''ऐसे व्यक्ति को प्रस्तावित दंड पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का कोई अवसर देना आवश्यक नहीं होगा 42 वें संशोधन में पहले चरण में यानि जांच के दौरान जैसा कि संविधान के 15 वें संशोधन द्वारा पेश किया गया था, उचित अवसर के दायरे को विस्तारित बरकरार रखते हुए जांच के बाद प्रस्तावित दंड के खिलाफ समुचित प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का अवसर छीन लिया था। 42 वें संशोधन के बाद इस बात पर विवाद खडा हो गया कि क्या जब जांच प्राधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अलावा अन्य होता है, तो कर्मचारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों व सबूतों पर अपना विवेक प्रयोग करने से पहले उसके द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की एक प्रति पाने का अधिकार है या नहीं, कर्मचारी जांच अधिकारी के निष्कर्षों की प्रति तभी पाने का हकदार है जब

अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्ष पर पहुंचे और दंड का प्रस्ताव दे। 42 वें संशोधन के बाद इस मुददे पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के परस्पर विरोधी निर्णय थे और इस न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठ के कुछ निर्णयों में यह माना गया कि जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है।

इस प्रकार अधिकृत निर्णय के लिए मोहम्मद रमजान (सुप्रा) के मामलें को तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए रखा गया। जिसमें यह निर्धारित किया गया कि एक अपचारी कर्मचारी संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत तो और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन में उसे उचित अवसर प्रदान करने के लिए जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त करने का हकदार माना गया है और यदि ऐसी कोई प्रति प्रस्तुत नहीं की गई तो आदेश रदद किया जाना उचित था लेकिन यह निर्देश दिया गया था कि निर्णय भविष्यलक्षी होगा और निर्णय की तारीख से पहले पारित आदेशों पर लागू नहीं होगा। अर्थात रमजान के मामलें के पश्चात के आदेशों पर लागू होगा।

तत्पश्चात जब यह पाया गया कि कैलाशचन्द्र अस्थाना बनाम यूपी राज्य के मामलें (1988) 3 एससीसी 600 एवं मोहम्मद रमजान के मामलें में विराेधाभास था। तब इसीआइएल के मामलें में इस मामलें काे

संविधान पीठ को भेजा गया, जिसने इसके विचार के लिए सात प्रश्न तैयार किए थे जो निम्न है-

"1- क्या रिपोर्ट कर्मचारी को तब भी प्रस्तुत की जानी चाहिए, जब अनुशासनात्मक जांच करने की प्रक्रिया निर्धारित करने वाले वैधानिक नियम इस विषय पर मौन है या इसके विरुद्ध है?

2- क्या जांच अधिकारी की रिपोर्ट अपचारी कर्मचारी को प्रस्तुत करना आवश्यक है? भले ही दी गयी सजा बर्खास्तगी, निष्कासन या रेंक में कमी की बडी सजा के अलावा हो?

3- क्या रिपोर्ट प्रस्तुत करने की बाध्यता केवल तभी है जब कर्मचारी इसके लिए पूछता है या क्या यह अन्यथा भी मौजूद है?

4- क्या मोहम्मद रमजान खान के मामलें में निर्धारित कानून सभी सरकारी एवं गैर सरकारी प्रतिष्ठानों, सार्वजिनक एवं निजी क्षेत्रों के उपक्रमों पर लागू होगा?

5- दंड के आदेश पर रिपोर्ट प्रस्तुत न करने का क्या प्रभाव है और ऐसे मामलों में कर्मचारी को क्या राहत दी जानी चाहिए?

6- रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता वाला कानून किस तारीख से लागू होना चाहिए?

7- जब से मोहम्मद रमजान खान का मामला भविष्यलक्षी प्रभाव वाला कानून बना अर्थात 20 नवम्बर 1990 के बाद पारित दंड के आदेशों पर लागू होगा अर्थात जिस दिनांक को मोहम्मद रमजान खान का निर्णय दिया गया यह प्रश्न बदले में एक और प्रश्न भी उठाता है अर्थात क्या यह कानून 20 नवम्बर 1990 से पहले भी लागू था?"

42 वें संशोधन के बाद भी अनुच्छेद 311(2) की व्याख्या करते हुए संविधान पीठ द्वारा यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया कि जब जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अलावा होता है, तो अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित हो जाती है। पहला चरण तब समाप्त होता है जब अनुशानात्मक प्राधिकारी सबूतों, जांच प्राधिकारी की रिपोर्ट और दोषी अधिकारियों के जवाब के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचते है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्ष के आधार पर दंडित करने का निर्णय लेता है। रिपोर्ट प्राप्त करने के कर्मचारी के अधिकार को जांच के पहले चरण में खुद का बचाव करने के लिए उचित अवसर का एक हिस्सा माना गया और इस अधिकार से वंचित होने के बाद वास्तव में, उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपनी

बेगुनाही साबित करने के लिए और खुद का बचाव करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया।

न्यायालय ने माना कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपों पर अपना निर्णय लेने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट को अस्वीकार करना न केवल कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 311(2) आवश्यक उचित अवसर से वंचित करना है बल्कि प्रकृतिक न्याय के सिद्धातों का उल्लघंन भी है। जिसे संविधान के अनुच्छेद 14 का हिस्सा 2 संविधान पीठों द्वारा भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल (1985) 3 एससीसी 398 और चरणलाल साहू बनाम भारत संघ (1990) 1 एससीसी 613 में माना गया। इसीआइएल में निर्णय के अनुसार उक्त सिद्धांत उन मामलों पर भी लागू होगा जहां जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करने के सवाल पर वैधानिक नियम या तो मौन है या इसे प्रतिबंधित करते है। उपरोक्त विवेचन के दृष्टिगत प्रश्न क्रमांक का उत्तर संविधान पीठ द्वारा निम्नानुसार दिए गए है -

> "चूंकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट को उपलब्ध कराने से अस्वीकार करना युक्तियुक्त अवसर की अस्वीकृति और प्रकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लघंन है इसलिए चाहे वैधानिक नियम कैसे भी हो जो कर्मचारी को रिपोर्ट देने से इनकार करते है प्रकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है

और इसलिए अमान्य है। इस कारण अपचारी कर्मचारी रिपोर्ट की प्रति पाने का हकदार होगा भले ही वैधानिक नियम रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अनुमति देती हो या इस विषय पर मौन हो।"

प्रश्न सं.- 5 अर्थात सजा के आदेश पर जांच रिपोर्ट उपलब्ध न कराने का प्रभाव, संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय के पेराग्राफ 30 और 31 का प्रसंगिक भाग निम्नानुसार है-

"अगला प्रश्न यह है कि जब जांच अधिकारी की रिपोर्ट कर्मचारी को नहीं दी जाती है तो दंड के आदेश पर क्या प्रभाव पडता है और ऐसे मामलों में उसे क्या राहत दी जानी चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर दिए गए दंड के सापेक्ष होना चाहिए। यदि रिपोर्ट कर्मचारी को उपलब्ध नहीं करायी गयी हो तब यदि कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया जाता है या सेवा से हटा दिया जाता है और जांच रदद कर दी जाती है तो कुछ मामलों में रिपोर्ट न देने से उस पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड सकता है जबकि अन्य मामलों में इससे उसे दिए गए अंतिम दंड पर कोई फर्क नहीं पडता है। इसलिए सभी मामलों में कर्मचारी को बकाया वेतन के साथ साथ उसकी बहाली का निर्देश देना न्याय के नियमों को एक यांत्रिक

अनुष्ठान तक सीमित करना है। उचित अवसर का सिद्धांत और प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत, कानून के शासन को बनाए रखने और व्यक्ति को उसके युक्तियुक्त अधिकारों की पुष्टि करने में सहायता करने के लिए विकसित किए गए है। वें न तो तंत्र मंत्र है और न ही सभी या विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले अनुष्ठान। कर्मचारी को रिपोर्ट देने से इनकार करने के कारण क्या वास्तव में वह प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है या नहीं यह प्रत्येक मामलें के तथ्य परिस्थितियों पर विचारोपरांत ही किया जाना चाहिए। इसलिए जहां रिपोर्ट उपलब्ध कराने के बाद भी कोई अलग परिणाम नहीं हुआ हो वहां कर्मचारी की बहाली और सभी परिणामी लाभ प्राप्त करने की अनुमति देना न्याय का उल्लघंन होगा।

यह बेईमानों और दोषियों को पुरूष्कृत करने और न्याय की अवधारणा को अतार्किक और अपमानजनक सीमाओं तक खींचने के समान है। यह प्राकृतिक न्याय का अप्राकृतिक विस्तार है जो अपने आप में न्याय के विपरीत है। इसलिए ऐसे सभी मामलों में जहां जांच अधिकारी की रिपोर्ट अनुशासनात्मक कार्यवाही में दोषी कर्मचारी को नहीं दी जाती है वहां अदालतों और न्यायाधिकरणों को जांच

रिपोर्ट की प्रति पीडित कर्मचारी को देनी चाहिए। यदि उसने न्यायालय या न्यायाधिकरण के सामने आने से पूर्व ही ऐसी प्रति प्राप्त न की हो और न्यायालय या न्यायाधिकरण कर्मचारी को यह दिखाने का अवसर दे कि रिपोर्ट को उपलब्ध न कराने के कारण उसका मामला किस प्रकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ। यदि पक्षकारों को सुनने के बाद न्यायालय या न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि जांच रिपोर्ट न देने से अंतिम निष्कर्ष और दी गयी सजा पर कोई फर्क नहीं पडेगा तो न्यायालय/न्यायाधिकरण को सजा के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

न्यायालय/न्यायाधिकरण को इस आधार पर सजा के आदेश को यात्रिंक रूप से अपास्त नहीं करना चाहिए कि जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध नहीं कराई गयी जैसा कि वर्तमान मामलें में खेदजनक रूप से किया जा रहा है। अदालताें को शार्टकट का सहारा लेने से बचना चाहिए। अदालतें या न्यायाधिकरण जो इस प्रश्न पर अपने विवेक का उपयोग करेंगे और दंड के आदेश को रदद करने या रदद न करने के लिए अपना कारण बताएंगे (और कोई आंतरिक अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी नहीं), इससे न तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन होगा और न ही

युक्तियुक्त अवसर उपलब्ध कराने से इनकार। यदि न्यायालय/न्यायाधिकरण को लगता है कि जांच रिपोर्ट उपलब्ध कराने से मामलें के परिणाम में कोई फर्क पडेगा तो उसे दंड के आदेश को रदद कर देना चाहिए।

प्रश्न सं. 4 व 7 अर्थात जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता वाला कानून किस तारीख से लागू होना चाहिए, 20 नवम्बर 1990 से जब मोहम्मद रमजान वाले मामलें में फैसला सुनाया गया था या उससे भी पहले और यदि इसे भविष्यवर्ती प्रभाव से लागू करने के लिए माना गया तो 20 नवम्बर 1990 से पहले प्रचलित कानून क्या था इसका उत्तर विशेष रूप से पेरा 33 में दिया गया है जिसका प्रासंगिक भाग इस प्रकार से है:- "मोहम्मद रमजान खान के मामलें में पहली बार न्यायालय ने इस बारे में कानून निर्धारित किया उस निर्णय में निर्धारित कानून को भविष्यवर्ती प्रभाव से लागू किया यानि 20 नवम्बर 1990 के बाद पारित सजा के आदेशों पर लागू किया। उक्त स्थापित कानून उस तारीख से पहले पारित सजा के आदेशों पर लागू नहीं था।

यह इस तथ्य के बावजूद कि उनमें से कुछ कार्यवाही उस तारीख के बाद अदालतों में लंबित मामलों में उत्पन्न

हुई। उक्त कार्यवाही का निर्णय उक्त तिथि से प्रचलित कानून के अनुसार किया जाना था, जिसके लिए प्राधिकारी कर्मचारी को, जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने की आवश्यकता नहीं थी। इसका एक मात्र अपवाद यह था कि जहां अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में सेवा नियमों में कर्मचारी को रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करना अनिवाय बना दिया हो।"

इस प्रकार मोहम्मद रमजान के मामलें में इस न्यायालय के निर्णय को इसीआईएल के मामलें में संविधान पीठ द्वारा अनुमोदित किया गया जांच अधिकारियों की रिपोर्ट से इनकार करना संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत कर्मचारी को समान अवसर से वंचित करना होगा और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लघंन है। उपरोक्त दोनो निर्णय एक ऐसे मामलें से निपट रहे थे जहां नियमों के तहत अपचारी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराने की कोई आवश्यकता नहीं थी और इसीआइएल मामलें में निर्णय इस प्रश्न पर मौन है कि जांच रिपोर्ट की प्रति जहां ऐसे वैधानिक नियमों के तहत प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है और प्रस्तुत की जानी चाहिए। वहां जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत न करने का क्या प्रभाव होगा।

वर्तमान मामलें में जैसा कि उपर वर्णित है कि सक्षम प्राधिकारी ने दिनांक 13-03-1973 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया उस तारीख को निर्विवाद रूप से, सिविल सेवा (वर्गीकरण नियंत्रण और अपील) नियम 1930 के नियम 55 ए को यूपी संशोधन द्वारा संशोधित और प्रतिस्थापित किया गया।

" नियम 55 ए एक सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जांच पूरी होने के बाद और दंड प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड के संबंध में अनंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद यदि प्रस्तावित दंड बर्खास्तगी निष्कासन या पदावनति है तो नियम 55 के लिए तैयार की गई कार्यवाही की प्रति उसे उपलब्ध करवायी जावेगी और उसमें उन सिफारिशों को छोडा जाएगा जा े जांच करने वाले अधिकारी द्वारा दंड के संबंध में की गई है और एक विशेष तिथि तक कारण बताये जाने के लिए कहा जाएगा जिससे उसे उचित समय मिल सके कि उस पर प्रस्तावित दंड क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए।

बशर्ते कि यदि पर्याप्त कारणों से दंड प्राधिकारी नियम 55 के तहत तैयार की गई कार्यवाही के किसी भी भाग या पूरी कार्यवाही से असहमत है तोऐसी असहमति के बिंदु या बिंदुओं को उसके ऐसे असहमति के आधार के संक्षिप्त

विवरण के साथ आरोपित सरकारी कर्मचारी को नियम 55 के तहत तैयार की गई रिपोर्ट के साथ सूचित करेगा।"

उपरोक्त नियम के अवलोकन से पता चलेगा कि क्या बर्खास्तगी के मामलें में वर्तमान मामलें की तरह, एक सरकारी कर्मचारी नियम 55 के तहत तैयार की गई कार्यवाही की एक प्रति प्राप्त करने का हकदार है जिसका अर्थ जांच रिपोर्ट है।

इसी आइ एल के मामलें में निर्णय को एक मिनट पढने से ऐसा प्रतीत होता है कि तैयार किए गए सात प्रश्नों में से प्रश्न सं. 6 व 7 का उत्तर देते समय संविधान पीठ ने निर्धारित किया कि उन प्रश्नोें के संबंध में दिए गए उत्तर का एक मात्र अपवाद यह है कि जहां जांच कार्यवाही के संबंध में सेवा नियमों ने स्वयं कर्मचारी को रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करना अनिवार्य बना दिया हो वहां कार्यवाही की प्रति उपलब्ध करवायी जावेगी। अन्य प्रश्नों के उत्तर देते समय प्रश्न सं. 5 जो विपरीत रूप से प्रभावित होने से संबंधित थे बेंच ने कहीं भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा कि उक्त उत्तर उन मामलों पर भी लागू हाेगा जहां वैधानिक नियमों के अनुसार अपचारी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध करवाने का प्रावधान है। जैसा कि उपर कहा गया है कि प्रश्न सं. 5 व 6 के संबंध में बैंच ने स्पष्ट रूप से वैधानिक नियमों के अंतर्गत आने वाले मामलें इसकी प्रयोज्यता को बहाल कर दिया। जबकि प्रश्न सं. 5 के उत्तर में ऐसा अपवाद

नहीं बनाया गया है जो यह दर्शाता हो कि खंड पीठ में दोनो खंडों कोई अंतर नहीं पाया जिसमें पहला अनुच्छेद 311(2) द्वारा कवर किया गया और दूसरा वैधानिक नियमों द्वारा कवर किया गया, इनमें कोई अंतर नहीं किया गया है और माना जाएगा कि दोनो खंडो में समान रूप से कानून निर्धारित किया गया है। यदि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की जाती है तो यह आशय नहीं होगा कि उससे स्वतः ही सजा का आदेश अमान्य हो गया जब तक कि अपचारी अधिकारी इससे प्रतिकूल रूप से प्रभावित न हुआ हो। तब उसमें काेई अंतर करने का औचित्य नहीं है।

इस प्रकार इ सी आइ एल के मामलें से यह स्पष्ट है कि संवैधानिक आदेश यानि अनुच्छेद 311(2) के तहत आने वाले मामलों में, जांच को प्रस्तुत न करना, सजा के आदेश के लिए घातक नहीं है जब तक कि प्रतिकूल रूप से प्रभावित होना नहीं दर्शाया गया हो। यदि किसी संवैधानिक प्रावधान के उल्लघंन के लिए कोई आदेश तब तक अमान्य नहीं होगा जब तक कि प्रतिकूल रूप से प्रभावित होना नहीं दर्शाया जाता है। तो यह समझने में विफल रहते है कि वैधानिक नियमों में जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करने की आवश्यकता एक उच्च स्तर पर खडी होगी क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न भौतिक नहीं है।

मामलें की जांच दूसरे दृष्टिकोण से की जा सकती है ऐसे मामलें हो सकते है जहां वैधानिक प्रावधानों, नियमों व विनियमों का उल्लघंन क्या

यह कहा जा सकता है कि ऐसा प्रत्येक उल्लघंन परिणामी कार्यवाही को शून्य और / या अमान्य बना देगा? कानून में कुछ ठोस प्रावधान हो सकते है उदाहरण के लिए किसी विशेष कर्मचारी पर विशेष दंड लगाने के लिए सक्षम प्राधिकारी कौन है ऐसे प्रावधान का कठोरता से अनुपालना किया जाना चाहिए क्योंकि इन मामलों में पर्याप्त अनुपालन का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए जहां एक नियम विशेष रूप से यह प्रदान करता है कि अपचारी अधिकारी को दूसरे पक्ष की साक्ष्य समाप्त होने के बाद अपने मामलें के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा और यदि ऐसा कोई अवसर नहीं दिया जाता है तो यह कहना संभव नहीं होगा कि जांच भ्रष्ट नहीं हुई। लेकिन कई प्रक्रकियात्मक प्रावधानों के संबंध में जैसा भी मामला हो प्राप्त अनुपालन के सिद्धांत या पूर्वाग्रह के परीक्षण को लागू करना संभव होगा। प्रक्रियात्मक प्रावधानों के बीच भी मौलिक प्रकृति के कुछ प्रावधान हो सकते है जिनका अनुपालन किया जाना चाहिए और जिन मामलों में पर्याप्त अनुपालन का सिद्धांत प्राप्त नहीं हो सकता है लेकिन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने का प्रश्न महत्वपूर्ण हो सकता है। मौलिक प्रकृति के अलावा अन्य प्रक्रियात्मक प्रावधानों के संबंध में पर्याप्त अनुपालन का सिद्धांत उपलब्ध होगा और ऐसे मामलों में इस स्तर पर आपतियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। परीक्षण यह होना चाहिए कि दोषी अधिकारी की निष्पक्ष सुनवाई हुई या नहीं।

रसेल बनाम डयुक आफ नोरफाक और अन्य 1949 फिर एक एएलएल इ.आर. 109 के मामलें में अपील न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया था कि प्रकृतिक न्याय के सिद्धांत को किसी भी कठोर और तेज फार्मूलों तक सीमित नहीं किया जा सकता न ही इसे लागू किया जा सकता। इसे एक संकीर्ण स्थिति में नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसकी प्रायोज्यता प्रत्येक मामलें के संदर्भ और तथ्यों परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

यहां तक कि सामान्य कानून जैसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 नियम 90 के अलावा धारा 99ए और 115 जैसे विभिन्न प्रावधान है जहां केवल इसलिए कि आदेश में दोष त्रुटि या अनियमतिता है उसे तब तक दरकिनार नही किया जाएगा जब तक कि इसने निर्णय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं किया हो। इसी तरह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 में भी व्रणित है कि किसी सक्षम अदालत द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष दंडादेश या आदेश केवल किसी प्रारूपिक त्रुटि चूक या अनियमितता के कारण रदद नहीं किया जाएगा जब तक कि न्यायालय की राय में वास्तव में इसके कारण न्याय की विफलता नहीं हुई है। हमें कोई कारण नहीं मिलता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में नियमों के नियम 55ए जैसे वैधानिक प्रावधानों के मामलें में उपरोक्त प्रावधानों में अंतर्निहित सिद्धांत क्यों लागू नहीं होगा। नियम 55ए में उचित अवसर और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अलावा कुछ भी नहीं है।

इस संबंध में कुछ निर्णयों का उल्लेख किया जा सकता है। रिज बनाम बादमीन व अन्य 1964 अपील केसेज 40 के मामलें में हाउस ऑफ लार्ॅडस एक ऐसे मामलें पर विचार कर रहा था जहां एक मुख्य कांस्टेबल को बिना किसी सूचना के सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और निगरानी समिति द्वारा यह सवाल उठाया गया था कि क्या निर्णय अमान्य था या केवल रदद करने योग्य था। हाउस ऑफ लार्ॅडस ने निर्धारित किया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किये बिना किया गया निर्णय शून्य उस मामलें में उल्लघंन, हालांकि एक प्रक्रियात्मक था, एक मौलिक प्रकृति का था क्योंकि इसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लघंन का मामला था।

आर बनाम सचिव राज्य परिवहन एक पक्षीय वेंट काउंटी काउंसिल 1987 1 एएलएल ई.आर. 161 के मामलें में अपील न्यायालय ने एक पुल पर टोल शुल्क बढाने के मामलें में पूर्वाग्रह का परीक्षण लागू किया। अधिनियम में वृद्धि करने से पहले सार्वजनिक सुनवाई का प्रावधान किया गया था। प्रक्रियात्मक अनुचितता की शिकायत की से निपटने के लिए अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब तक प्रक्रियात्मक अनुचितता के परिणाम स्वरूप पूर्वाग्रह स्थापित नहीं हो जाता तब तक किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

डेविस बनाम कार्वे पोल एवं अन्य 1956 1 वीक्ली लाॅ रिपोर्ट 833 के मामलें में यह कहा गया कि घरेलु न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होने वाले व्यक्ति को उन सभी मामलों की औपचारिक सूचना नहीं दी गयी जिनमें उनके आचरण पर सवाल उठाया जाना था लेकिन जरूरी नहीं कि वे सफलतापूर्वक यह दावा करने का हकदार हो कि कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार नहीं की गयी थी क्योंकि उस मामलें में उठाए गए अन्य मामलों के संबंध में कोई भी तथ्यात्मक विवाद नहीं था। परिस्थितियों में यह माना गया कि वादी नोटिस की कमी से प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं हुआ।

जानकीनाथ सारंगी बनाम के मामले में उड़ीसा राज्य, [1969] 3 एससीसी 392, के मामलें में हिदायतुल्ला, सी. जे. ने अदालत की ओर से बोलते हुए, एक विभागीय कार्यवाही में पूर्वाग्रह के सवाल पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय के फैसले को इस आधार पर मंजूरी दे दी कि अपचारी सरकारी कर्मचारी के पक्ष में राहत देने से इनकार कर दिया गया था कि उसे कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था और इस प्रकार टिप्पणी कीः

> " इस सामग्री से यह तर्क दिया जाता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लघंन किया गया था क्योंकि अपीलकर्ता को अपनी साक्ष्य दर्ज करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया और इसके अलावा जो सामग्री उसकी

पीठ के पीछे एकत्रित की गयी थी उसका उपयोग उसके अपराध निर्धारित करने में किया गया था, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लघंन किया जाता है और वह गंभीर मामला है तो यह न्यायालय बर्खास्तगी के आदेश को रदद करके हस्तक्षेप करेगा। लेकिन ऐसे कई मामलें है। हमें यह देखना होगा कि वास्तविक पूर्वाग्रह किस कारण उत्पन्न हुआ। बहराल जो प्रश्न गवाहों से पूछे गये थे उनको रिकोर्ड किया गया और मुख्य अभियंता को भेजा गया और उनके उत्तर प्राप्त हुए इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्तर अपील कर्ता के हाथों में नहीं दिए गए थे। लेकिन उसने उन्हें उस समय देखा जब वह अभ्यावेदन दे रहा था औश्र दिलचस्प बात यह है कि उसने उन उत्तरों का उपयोग अपने बचाव में किया। दूसरे शब्दों में उन्हें उसकी पीठ पीछे एकत्रित नहीं किया गया था और उसका उपयोग उसके लाभ के लिए किया जा सकता था और उसके पास अपने बचाव में उनका उपयोग करने का अवसर था। हमे नहीं लगता कि इस मामलें में अपीलकर्ता द्वारा जिन दो सेवानिवृत अधीक्षण अभियंताओं का हवाला दिया गया था या उनमें से किसी एक की जांच नहीं करने से कोई पूर्वाग्रह पैदा हुआ हो।"

के. एल. त्रिपाठी बनाम भारतीय स्टेट बैंक और अन्य, [1984] 1 एससीसी 43, के मामलें में इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के प्रत्येक पहलू के उल्लंघन से जांच को दूषित करने का प्रभाव पड़ता है, इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि आयोजित जांच और लगाई गई सजा को कुछ गवाहों की प्रतिपरीक्षा के अवसर के कारण दूषित नहीं कहा जा सकता है जो अपचारी को नहीं दिए गए थे और इस प्रकार कहा गया थाः

> " मूल अवधारणा प्रशासनिक, न्यायिक या न्यायिक कार्रवाई में निष्पक्षता है। अर्ध-न्यायिक कार्रवाई में निष्पक्ष खेल की अवधारणा इस पर निर्भर होनी चाहिए कि पक्षकारों के बीच विशेष संबंध, यदि कोई हो जिसमें अगर विश्वसनीयता एक व्यक्ति जिसने गवाही दी है या कुछ जानकारी दी है वह संदेह में है, या यदि गवाही देने वाले व्यक्ति का संस्करण या बयान विवादित है। ऐसे मामलों में प्रतिपरीक्षा का अधिकार अनिवार्य रूप से निष्पक्षता का हिस्सा होना चाहिए। लेकिन जहां तथ्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं है एवं परिस्थितियों की निश्चित व्याख्या है वहां कार्यवाही में निष्पक्ष खेल को उचित ठहराने के लिए प्रतिपरीक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। जब तथ्यों पर प्रश्न पर कोई विवाद नहीं है और किसी आदेश से पीडित

पक्ष पर कोई वास्तविक पूर्वाग्रह पैदा नहीं हुआ है तो जिरह के किसी भी औपचारिक अवसर की अनुपस्थिति, निष्पक्ष रूप से किए गए निर्णय को अमान्य या रदद नहीं करती। ऐसो तब और अधिक होता है तब जिस पक्ष के खिलाफ आदेश पारित किया गया था वह तथ्यों पर विवाद नहीं करता है और संस्करण की सत्यता या बयान की विश्वनीयता का परीक्षण करने की मांग नहीं करता है।"

सुनील कुमार बनर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य। [1980] 3 एस. सी. सी. 304, के मामलें में एक विभागीय कार्यवाही में एक सवाल उठाया गया था कि जिस अपचारी ने खुद की जांच नहीं की थी उससे सबूतों में उसके खिलाफ की जाने वाली परिस्थितियों पर जांच अधिकारी द्वारा पूछताछ नहीं की गयी थी ताकि उसे समझाने में सक्षम बनाया जा सके। प्रासंगिक नियमों के नियम 8(19) के तहत यह आवश्यक था इसमें अदालत ने माना कि चूंकि अपचारी अपने खिलाफ आरोपों से पूरी तरह वाकिफ था और उसने अपने लिखित बचाव में आरोपों के सभी पहलुओं को निपटाया था। इसलिए जांच अधिकारी द्वारा उससे पूछताछ करने में विफलता से वह पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं हुआ ऐसे में न्यायालय में दिए गए दंडादेश में हस्तक्षेप करने से इनकार किया।

स्टेट बैंक ऑफ पटियाला एंड ओआरएस बनाम एस. के. शर्मा, [1996] 3 एस. सी. सी. 364, के मामलें में एक अधिकारी के खिलाफ एक विभागीय कार्यवाही थी जिसमें दी गई सजा को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि बैंक विनियमों के विनियमन 68 (बी) (iii) का उल्लंघन किया गया था जिसमें वैधानिक बल था जिसके तहत पहले दर्ज किए गए गवाहों के बयान की प्रतियों को जांच अधिकारी द्वारा गवाहों की जांच शुरू होने से तीन दिन पहले किसी अपचारी को प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी, लेकिन ऐसी कोई प्रति बिल्कुल भी प्रदान नहीं की गई थी और एक आधार लिया गया था कि अपचारी को उसी पर विचार करने और उससे नोट्स लेने का अवसर दिया जाएगा, हालांकि जांच कार्यवाही शुरू होने से केवल आधा घंटा पहले ही उसे उस पर विचार करने और नोट्स लेने का अवसर दिया गया, इन परिस्थितियों में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विनियमन का पर्याप्त अनुपालन किया गया था, इस प्रकार दिए गए दंड को उपरोक्त विनियमन के उल्लंघन के कारण इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दूषित नहीं किया जा सकता है कि अपचारी ने स्पष्ट रूप से या उसके आचरण से, प्रक्रियात्मक प्रावधान को माफ कर दिया जो एक अनिवार्य चरित्र का था जिसकी कल्पना उसके हित में की गई थी न कि सार्वजनिक हित में और जिसके कारण पूर्वाग्रह नहीं था।

कृष्ण लाल बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, [1994] 4 एस. सी. सी. 422, इस मामलें में न्यायालय ऐसे मामलें से निपट रहा था जहां

जम्मू और कश्मीर (सरकारी सेवक) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1962 की धारा 17(5) के तहत सजा देने से पहले एक सरकारी कर्मचारी को बर्खास्तगी के मामलें में जांच रिपोर्ट की एक प्रति देने का का अधिकार था, जिस प्रावधान का उल्लंघन होने के कारण यह सवाल उठा था कि क्या सजा देने का आदेश दूषित था। ई. सी. आई. एल. के मामले में संविधान पीठ के फैसले के बाद, इस न्यायालय ने यह कहा कि यदि अपचारी को रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ हो तो इससे सजा का आदेश भ्रष्ट नहीं होगा और इस प्रकार टिप्पणी कीः

> " इसलिए हमारा मानना हैं कि अनिवार्य होने के बावजूद अधिनियम की धारा 17(5) में उल्लिखित आवश्यकता ऐसीे है जिसे माफ किया जा सकता है हालांकि यदि आवश्यकता को माफ नहीं किया गया है तो इसके उल्लघंन में कोई भी कार्य या कार्यवाही अमान्य होगी। वर्तमान मामलें में चूंकि अपीलकर्ता ने लाभ माफ करना तो दूर कार्यवाही की प्रति मांगी जिसके बावजूद उसे उपलब्ध नहीं कराया तो यह माना जाना चाहिए कि बर्खास्तगी का आदेश कानून में अमान्य था।
>
> हालांकि इस कार्यवाही में ही बर्खास्तगी आदेश को रदद करने की मांग करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है क्योंकि

इस संदर्भ में इसीआइएल के मामलें में कहा गया है वह फिर भी लागू होगा ऐसो इस कारण से है कि प्राकृतिक न्याय का उल्लघंन जो उस मामलें में निर्धारित किया गया था एक आदेश को अमान्य कर देता है। जिसके बावजूद संविधान पीठ ने यह नहीं माना था कि जांच अधिकारी के रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत किए बिना पारित बर्खास्तगी का आदेश लागू करने के लिए पर्याप्त होगा। आदेश को एक तरफ रखने के बजाय मामलें की जांच करने का निर्देश दिया गया जैसा कि पेरा 31 में वर्णन है।"

इस प्रकार उपरोक्त निर्णयों व कानून के विभिन्न प्रावधानों के परिपेक्ष्य में हम मानते है कि जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करने के नियमों के नियम 55 ए में प्रावधान प्रक्रियात्मक और आदेशात्मक प्रकृति का है। लेकिन फिर भी एक अपचारी को यह दिखाना होगा कि वह इसके अनअनुपालन से विपरीत रूप से प्रभावित हो गया और परिणामस्वरूप इसीआइएल ने अपने मामलें में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून इस आशय का है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में पारित आदेश को केवल इस आधार पर रदद नहीं किया जा सकता कि दोषी अधिकारी को जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत नहीं की गयी थी। लेकिन वह यह दिखाने के लिए बाध्य है कि ऐसी जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से उसके साथ पक्षपात हुआ

है। यह उन मामलों पर भी लागू होगा जहां वैधानिक प्रावधानों या सेवा नियमों के तहत जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

अब मामलें के तथ्यों की ओर घूमते हुए यह देखना होगा कि क्या जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से दोषी अधिकारी को किसी पूर्वाग्रह का सामना करना पडा निर्विवाद रूप से जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद राज्य सरकार ने अपचारी को कारण बताओं नोटिस भेजा जिसके अनुसार उसने नोटिस का जवाब दिया और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उक्त कारण बताओ नोटिस के जवाब पर विचार करने के बाद बर्खास्तगी का आदेश पारित किया। प्रत्यर्थी का यह मत नहीं है कि जांच रिपोर्ट के अभाव में वह बर्खास्तगी का आदेश पारित होने से पहले प्रभावी कारण बताओं का नोटिस का जवाब प्रस्तुत नहीं कर सका। न तो न्यायाधिकरण न ही उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी ने वहां यह मुददा उठाया था कि जांच रिपोर्ट के अभाव में नोटिस का जवाब प्रभावी रूप से जाहिर नहीं कर सका न ही यह कहा गया है कि कारण नहीं बताए। केवल यह शिकायत की गयी कि अपचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गयी। इन तथ्यों से यह मानना संभव नहीं है कि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से प्रत्यर्थी पूर्वाग्रह से ग्रसित हो गया हो। उपरोक्त कारणों से हमारा मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा न्यायाधिकरण के आदेश को बरकरार रखना उचित नहीं था। जिसके तहत प्रत्यर्थी को सेवा से बर्खास्त करने के आदेश से रदद कर दिया गया था। तदनुसार अपील की अनुमति

दी जाती है और विवादित आदेशों को रदद किया जाता है। खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील की अनुमति दी गई।

बी. एस

नोट- यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मुकेश कुमार प्रथम (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्येश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्येश्य के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्येश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।